॥ श्री सर्वेश्वरो विजयतेतराम् ॥

# पुष्पाञ्जलिसहितम्
# श्रीपुष्पदन्तविरचितम्
# शिवमहिम्नः स्तोत्रम्

( पदच्छेद और भाषानुवादयुतम् )

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ
महामण्डलेश्वर पूज्यपाद
श्री १०८ श्री स्वामी शुकदेवानन्द सरस्वती जी महाराज
के
आदेशानुसार सम्पादितम्

सम्पादक एवं टीकाकार
स्वामी विवेकानन्द सरस्वती

—: प्रकाशक :—
श्री परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश [ हिमालय ]

॥ श्री सर्वेश्वरो विजयतेतराम् ॥

# पुष्पाञ्जलिसहितम्
# श्रीपुष्पदन्तविरचितम्
# शिवमहिम्नः स्तोत्रम्

( पदच्छेद और भाषानुवादयुतम् )


श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ
महामण्डलेश्वर पूज्यपाद
श्री १०८ श्री स्वामी शुकदेवानन्द सरस्वती जी महाराज
के
आदेशानुसार सम्पादितम्
सम्पादक एवं टीकाकार
स्वामी विवेकानन्द सरस्वती



—: प्रकाशक :—
श्री परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश [हिमालय]

प्रकाशक :—

मन्त्री,

श्री परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश [हिमालय]

प्रथम वार—१००० प्रति

सन् १९६०

मुद्रक :—श्री नारायण प्रेस, ऋषिकेश [देहरादून]

Syllabus

3 – 0
1 – 14
1 – 11
6
4 – 10
6

English

Poetry – 1
Note – 1
Mem & manners 1
Note 1

Physics by G.L. Datta
New style examination
Physics by Dutta
Practicals Book
Distribution Book

Chemistry P.L. Soni 1
Chemistry Practicals by P.L. Soni – 1
Chemistry Practicals by B.M. [illegible] 1

Zoology by D.R. Puri 1
" Practicals by S.S. Bali 1

Botany by Chopra + Rochlani 1
" " P.L. Anand 1
" Practicals 1

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ

**श्री १०८ श्री स्वामी शुकदेवानन्द जी सरस्वती**

**महामण्डलेश्वर** ( सिद्ध-गिरि मठ, ललिता घाट, वाराणसी )

संस्थापक—**परमार्थ-निकेतन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेश ( हिमालय )**

**मुमुक्षु-आश्रम, शाहजहाँपुर**

# प्राक्कथन

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य महामण्डलेश्वर श्री १०८ स्वामी शुकदेवानन्द जी सरस्वती द्वारा संस्थापित और संचालित परमार्थ निकेतन धाम, ऋषिकेश (हिमालय) में पुष्पाञ्जलि सहित श्री शिवमहिम्नः स्तोत्र द्वारा सर्वेश्वर भगवान् विराजमान मन्दिर परमार्थ निकेतन, की प्रार्थना प्रातःसायं हुआ करती है। प्रार्थना और स्तुति के अर्थ और भाव को भी जब प्रार्थना करने वाले जानते हों और उस भाव तथा अर्थ की जानकारी के साथ प्रार्थना की जावे तो उसका बलवत्तर फल मिलता है। श्रुति का प्रमाण है 'यद्विद्यया करोति तद्बलवत्तरं भवति'। अतः पूर्वोक्त पूज्य-पाद श्रीयुत् श्री महामण्डलेश्वर जी महाराज की प्रेरणा और आदेश से श्री शिवमहिम्नः स्तोत्र की प्रस्तुत टीका श्लोकों के पदच्छेद और शब्दार्थ के साथ, भक्तों की सेवा में उपस्थित की जाती है। आशा है कि यह सेवा भक्तों को लाभदायक सिद्ध होगी—

परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश, विवेकानन्द सरस्वती
गुरुपूर्णिमा सं० २०१७ विक्रमी।

# शान्तिःपाठ

ॐ शंनो मित्रः शं वरुणः ॥ शंनो भवत्वर्यमा ॥ शंनइन्द्रो बृहस्पतिः ॥ शंनो विष्णुरुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे ॥ नमस्ते वायो ॥ त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ॥ त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ ऋतं वदिष्यामि ॥ सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मामवतु ॥ तद्वक्तारमवतु ॥ अवतु मां ॥ अवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गै स्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमदेवहितं यदायुः ॥ ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः ॥ स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः ॥ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥ तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

# ॥ श्री पुष्पाञ्जलिस्तोत्रम् ॥

ॐ श्री सर्वेश्वरो विजयतेतराम् ।

॥ हरिः ॐ ॥

नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥१॥

श्री नारायणमावरं च शरणं देवैः सदासेवितम् ।
तत्पुत्रं कमलासनं भवकरं ज्ञानैकरूपं विभुम् ॥
पुत्रं तस्य वसिष्ठमानसमिमं तस्यापि शक्तिं मुनिम् ।
तत्पुत्रं च पराशरं स्मृतिकरं व्यासञ्च तस्माद्भवम् ॥२॥

तत्पुत्रं शुकदेवमाजनुरिदं विश्वं विदन्तं खिलं ।
तच्छिष्यं परमप्रबोधलसितं श्री गौडपादाभिधम् ॥
शिष्यं तस्य समर्चनीयचरणं गोविन्दमेतत्परम् ।
द्वैतध्वान्तनितान्तवारणकरं श्री शङ्करं शङ्करम् ॥३॥

तच्छिष्यं परमात्मबोधकुशलं श्री पद्मपादाह्वयम् ।
श्रीहस्तामलकं विचित्रचरितं श्रीतोटकं दैशिकम् ॥
आचार्य्यञ्च सुरेश्वरं बुधसदौ विख्यातकीर्तिंव्रजम् ।
वन्दे तान् सततं यतीन्द्रमजरं सत्यादिवाक्योदितम् ।४।

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतम् ।
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ॥
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयम् ।
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्री दक्षिणामूर्तये ॥५॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम् ।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम् ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥६॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥७॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥८॥
शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥९॥
ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने ।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥१०॥

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्व्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने । नमो वयं वै श्रवणाय कुर्महे । स मे कामान्कामकामाय मह्यम् । कामेश्वरो वै श्रवणो ददातु । कुबेराय वै श्रवणाय महाराजाय नमः ॥

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् । सम्बाहुभ्यान्धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमि जनयन्देव एकः ॥

नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च ।
पुष्पांजलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

गजाननं भूतगणाधिसेवितम् । कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकम् । नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजम् ॥

ॐ नमः शिवाय

श्री पुष्पदन्त विरचितं

# शिवमहिम्नः स्तोत्रम्

## (१)

महिम्नः पारं ते परम विदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमति परिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥

पुष्पदन्त कहता है (हर) हे शंकर भगवान् (यदि) यदि (ते) आपकी (महिम्नः) महिमा का (परं) अन्तिम (पारं) पार (अविदुषः) न जानने वाले मुझ अज्ञानी की (स्तुतिः) यह स्तुति (असदृशी) आपकी महिमा के अनुरूप नहीं है (तत्) तो (ब्रह्मादीनां) ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं की (अपि) भी (त्वयि) तुम्हारे लिये उच्चारण की हुई (गिरः) वाणियाँ (अवसन्नाः) असफल, अधूरी और

अपर्याप्त हैं। (अथ) वास्तविकता यह है कि (स्वमति-परिणावधि) अपनी २ बुद्धि की पूर्ण सामर्थ्य के अनुसार (गृणन्) जिन्होंने स्तुति की है वे (सर्वः) सब ही (अवाच्यः) निर्दोष हैं। अतः (हर) हे शंकर भगवान् (स्तोत्रे) इस महिम्नः स्तोत्र के रूप में (मम) मेरा (एषः) यह (परिकरः) प्रयास भी (निरपवादः) दोष रहित है।

## (२)

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः॥

(तव) तुम्हारी, (च) और (महिमा) महिमा (वाङ्मनसयोः) वाणी और मन के (पन्थानं) मार्ग से, (अतीतः) परे है। (श्रुतिः) वेद (अपि) भी (अतद्व्यावृत्या) नेति नेति के रूप में वैदिक निषेध वाक्यों की सहायता के बिना (यं) जिसका वर्णन करने में (चकितं) आश्चर्य (अभिधत्ते) प्रगट करते हैं अर्थात् अपनी असमर्थता का भान करते हैं, (कस्य) किस के द्वारा, (स्तोतव्यः) तुम स्तुति के योग्य हो, (कतिविध गुणः) तुम में कितने गुण है, (कस्य)

किसकी (विषयः) बुद्धि तुमको समझ और प्रमाणित कर सकती है कोई नहीं जानता। (तु) परन्तु (अर्वाचीने) तुम्हारे वर्तमान साकार और सगुण, (पदे) स्वरूप में (कस्य) किसका (मन) मनः (न) नहीं और (कस्य) किसकी (वचः) वाणी (न) नहीं (पतति) जाती ? अर्थात् आपके सगुण और साकार रूप का तो सब ही मन से चिंतन और वाणी से गान करते हैं।

(३)

मधुस्फीता वाचः परममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता॥

[ब्रह्मन्] हे ब्रह्मन्, [मधुस्फीता] अत्यन्त माधुर्य्य से भरी हुई, [परमं] परम (अमृतं) अमृत रूप, [वाचः] वेद वाणी के [निर्मितवतः] रचने वाले [तव] तुम्हारे लिये [किं] क्या [सुरगुरोः] बृहस्पति की [वाग्] वाणी [अपि] भी [विस्मयपदं] आश्चर्यकारक हो सकती है अर्थात् क्या उसमें कोई नवीन उत्तम गुण निकल सकता है ? नहीं। इसलिये मैं अपनी [एतां] इस [वाणीं] वाणी को [भवतः] आपके [गुणकथनपुण्येन] गुणों के गान के रूप जो

पुण्य है उससे [पुनामि] पवित्र करता हूँ, [इति] इस प्रकार [अस्मिन्] इसी [अर्थे] आशय से [पुरमथन] हे पुरारी [मम] मेरी [तु] तो [बुद्धिः] बुद्धि, (व्यवसिता) आपकी स्तुति के प्रयास और उद्योग में लग रही है।

(४)

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ।।

(वरद) हे वरदान देने वाले शंकर भगवान्, (तव) तुम्हारा (यत्) जो [ऐश्वर्यं] ऐश्वर्य [जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्] जगत् की उत्पत्ति, रक्षा और प्रलय करने में प्रसिद्ध है (तत्) उस [त्रयीवस्तु] तीनों वेदों का सार पृथक् २ [तिसृषु] तीन (गुणभिन्नासु) भिन्न २ गुणों वाले (तनुषु) शरीरों में अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में [व्यस्तं] प्रगट हैं। परन्तु [इह] इस संसार में [एके] कोई २ [जड़धियः] जड़ बुद्धि वाले मूर्ख लोग [अस्मिन्] इसमें [अभव्यानां] असज्जनों अर्थात् दुर्जनों को [रमणीयां] प्रिय लगने वाली परन्तु वास्तव में (अरमणीं) अप्रिय, बुरी (व्याक्रोशीं) निन्दायुक्त वाणी अर्थात् दुर्वचन आपके उस

ऐश्वर्य को (विहन्तुं) मिटाने के लिये (विदधते) धारण करते हैं अर्थात् उच्चारण किया करते हैं।

(५)

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः॥

(अतर्क्यैश्वर्ये) जिनके ऐश्वर्य में किसी प्रकार से तर्क करने का अवसर नहीं, ऐसे (त्वयि) तुम में (हतधियः) नष्टबुद्धि का (अयं) यह, (अनवसरदुःस्थः) अवसर और औचित्य से रहित, (कुतर्क) कुतर्क (कांश्चित्) किन ही लोगों को (जगतः) संसार के (मोहाय) मुग्ध करने के लिए (मुखरयति) वाचाल, वकवादी बना देता है। (किमीहः) किस प्रकार की चेष्टा करके, (किंकायः) किस प्रकार का शरीर धारण करके, (किमुपायः) किन किन उपायों से, (किमाधारः) कहां खड़े होकर अथवा बैठकर (च) और (किमुपादानः) किस सामग्री से (स) वह (धाता) ईश्वर (खलु) वास्तव में (सृजति) सृष्टि की रचना करता है। वे (इति) ऐसे कुतर्क करते हुये अपना यह मत

प्रगट करते हैं कि शङ्कर भगवान तुमने इस सृष्टि को नहीं रचा, क्योंकि तुमतो निराकार हो, तुम्हारे पास सामग्री नहीं, सृष्टि रचने से पूर्व कोई स्थान भी नहीं था जहां बैठकर अथवा खड़े होकर तुम सृष्टि को रचते इत्यादि।

इसका उत्तर आगे श्लोक ६ में देखिये।

(६)

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगताम्-
अधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे॥

(अमरवर) हे देवों में श्रेष्ठ शंकर भगवान् (किं) क्या (अवयववन्तः) शारीरिक अवयव वाले साकार होते हुये (अपि) भी (लोकाः) लोकलोकान्तर (अजन्मानः) जन्म रहित हो सकते हैं? यदि नहीं हो सकते तो फिर (किं) क्या [जगतां] लोक लोकान्तर के [अधिष्ठातारं] अधिष्ठाता स्वामी का [अनादृत्य] अनादर करके अर्थात् उनको जगत् का कर्ता न मानकर [भवविधिः] संसार की रचना [भवति] संभव हो सकती है? [वा] अथवा [अनीशः] ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई [कुर्यात्] रचना कर सकता

है ? उसके पास भी [भुवनजनने] जगत की रचना के लिये [कः] कौन सी [परिकरः] सामग्री है। [यतः] इस कारण [इमे] ये लोग जो [त्वां प्रति] तुम्हारे सम्बन्ध में, उपर्युक्त श्लोक ६ में वर्णित, संशय करते हैं वे (मन्दाः) मन्दबुद्धि मूर्ख हैं।

(७)

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

(पयसां) सीधे टेढ़े भिन्न भिन्न मार्गों से बहती हुई अनेक नदियों के जल का (अर्णवः) समुद्र (इव) जैसे अन्त में पहुँचने का एक स्थान है उसी प्रकार (त्रयी) वेदों, (सांख्यं) सांख्यमत, (योगः) योगशास्त्र, (पशुपतिमतं) शैवशास्त्र और (वैष्णवं) वैष्णव मत (इति) ऐसे (प्रभिन्ने) भिन्न भिन्न (प्रस्थाने) मार्गों, मतों में जो (इदं) यही ठीक है अथवा (अदः) वही ठीक है (च) और (पथ्यं) हितकर है (इति) इस प्रकार (ऋजु-कुटिल-नाना-पथजुषां) सीधे, टेढ़े अनेक मार्गों का सेवन करने वाले (नृणां) मनुष्यों के

(त्वं) तुम ही (एकः) केवल (गम्यः) प्राप्त करने के योग्य स्थान हो, अर्थात् सब भिन्न मार्गों से चल कर अन्त में सब तुम्हारी ही शरण में पहुँचते हैं।

(८)

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम्।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहिताम्
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥

(वरद) हे वरद अर्थात् समस्त ऐश्वर्यों का अपनी कृपा से भक्तों को वरदान देने वाले शंकर भगवान् (महोक्षः) बूढ़ा बैल (खट्वाङ्ग) खाट का पाया (परशुः) कुठार, (अजिनं) व्याघ्रचर्म, (भस्म) श्मशान की राख, (फणिनः) सर्प (च) और (कपालं) मुर्दों की खोपड़ी (इतीयत्) यही (तव) तुम्हारी (तंत्रोपकरणं) वाहन, वस्त्र, अस्त्र आदि उपभोग की सामग्री है परन्तु (भवद्) आपकी (भ्रूप्रणिहितां) भ्रकुटी के हिलाने मात्र से दी हुई (तां तां) अनेक प्रकार की (ऋद्धिं) सम्पत्ति का (सुराः) इन्द्रादिक देवता (दधति) उपभोग करते हैं, उसे धारण करते हैं। (हि) यह निश्चय जान पड़ता है कि (स्वात्मारामं) जो

आत्मा में रमण करते हैं अर्थात् जो आत्मरत और आत्मतृप्त हैं उन्हें (विषयमृगतृष्णा) विषयभोग रूपी मृगतृष्णा (भ्रमयति) भ्रम में (न) नहीं डाल सकती अर्थात् उनको मोहित नहीं कर सकती।

(६)

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन! तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता॥

(कश्चित्) कोई (सर्वं) समस्त जगत् को (ध्रुवं) नित्य और सत् कहते हैं, (अपरः) दूसरे (इदं) इस (सकलं) सब जगत् को (अध्रुवं) अनित्य और असत् बतलाते हैं, (परः) तीसरे (एतस्मिन्) इस (समस्ते) समष्टि, एक रूप (जगति) जगत् में (अपि) भी (व्यस्तविषये) भिन्नता मानकर उसे (ध्रौव्याध्रौव्ये) नित्य और अनित्य अथवा सत् और असत् दोनों प्रकार का बतलाते हैं। (पुरमथन) हे पुरारे, (तैः) इन भिन्न-भिन्न मतों से (विस्मितः) आश्चर्यान्वित (इव) के समान मैं (त्वां) तुम्हारी (स्तुवन्) स्तुति करता हुआ (जिह्रेमि) लज्जित होता हूँ। किन्तु क्या (मुखरता) वाचालता

अर्थात् बोलते ही रहना यह स्वभाव (खलु ननु) क्या वास्तव में (धृष्टा) धृष्टता नहीं है ? अवश्य है। अतः मैं इसी धृष्ट स्वभाव द्वारा आपकी स्तुति करने के लिये प्रेरित हुआ हूँ। मेरी यह धृष्टता क्षमा करने के योग्य है।

(१०)

तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥

(गिरिश) हे गिरिश शंकर भगवान् (अनलस्कन्धवपुषः) अग्निस्तम्भरूपी शरीर वाले अर्थात् तेजस्वरूप (तव) तुम्हारे (ऐश्वर्यं) ऐश्वर्य का (परिच्छेत्तुं) अनुसंधान करने के लिये, पता लगाने के लिये (यत्) जो (विरञ्चिः) ब्रह्मा (यत्नात्) प्रयत्न करके (उपरि) ऊपर और (हरिः) विष्णु (अधः) नीचे, (यातौ) गये, परन्तु (अनलं) असफल रहे अर्थात् आपके ऐश्वर्य का पता लगाने में समर्थ न हुये। (ततः) उसके पश्चात् (यत्) जब (भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां) वे पूर्ण भक्ति और श्रद्धा के साथ तुम्हारी महान् स्तुति में तत्पर हुये तब (ताभ्यां) उनके लिये तुम (स्वयं) अपने

आप उपस्थित हो गये और दर्शन दिया। (किं) क्या (तव) तुम्हारी (अनुवृत्ति) भक्ति (फलति) फल (न) नहीं देती अर्थात् अवश्य देती है। भाव यह है कि कार्य कोई भी अपनी स्वयं शक्ति से नहीं कर सकता, वह उसमें सफलता तुम्हारी भक्ति द्वारा ही प्राप्त कर सकता है।

(११)

अयत्नादासाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद् बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान्।
शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद् भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम्॥

(त्रिपुरहर) हे त्रिपुरारे, (दशास्यः) रावण (त्रिभुवनं) तीनों लोकों को, (अवैरव्यतिकरं) वैर के अवसर से शून्य अर्थात् जहां एक भी प्रतियोगी अथवा वैरी उसका नहीं रहा ऐसा (अयत्नात्) सहज ही में बिना किसी कठिनाई और विशेष परिश्रम के (आसाद्य) प्राप्त करके (यद्) जो (रणकण्डूपरवशान्) युद्ध करने की उत्कण्ठा से जनित खुजली के वश में रहने वाली अर्थात् जिनकी उत्कट युद्ध करने की लालसा नहीं मिटी थी ऐसी (बाहून्) भुजाओं को (अभृत) धारण करता था उसने जो (शिरपद्मश्रेणी-

रचित) अपने दशों शिरों के कमलों की पंक्ति द्वारा रचित (चरणाम्भोरुहवलेः) आप के चरण कमलों में वलि भेंट चढ़ाई थी उस (त्वत्) आपकी (स्थिरायाः) अचल (भक्तेः) भक्ति का (इदं) यह (विस्फूर्जितं) परिणाम, प्रभाव और चमत्कार था।

## (१२)

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः॥

(त्वत्सेवा समधिगतसारं) आपकी सेवा द्वारा प्राप्त किया है बल जिनमें ऐसे (भुजवनं) भुजाओं के समूह से (बलात्) बल द्वारा (त्वत्) तुम्हारे, (अधिवसितौ) वास-स्थान (कैलासे) कैलास पर्वत के उठाने में (अपि) भी (विक्रमयतः) पराक्रम दिखलाया (अमुष्य) उस ऐसे रावण को (अलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि) थोड़ा सा अपना अंगूठा शिर पर रख कर दबा दिया था ऐसे (त्वयि) तुम्हारे करने पर उस रावण के लिये (पाताले) पाताल में (अपि) भी (प्रतिष्ठा) ठहरने को स्थान (अलभ्या) अप्राप्त

(आसीत्) था अर्थात् पाताल में भी उसकी प्रतिष्ठा भ्रष्ट हो गई। (ध्रुवं) यह निश्चित है कि (खलः) एक दुष्ट मनुष्य (उपचितः) ऐश्वर्य को पाकर मोह ग्रस्त हो जाता है। अर्थात् अज्ञानवश अपनी असली अवस्था भी भूल जाता है तथा अभिमान और गर्व करने लगता है।

## (१३)

यद्दर्द्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सतीं
अधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः।
न तच्चित्रं सम्यग्वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः॥

(सुत्राम्णः) इन्द्र की (परमोच्चैः) अत्यन्त उच्च कोटि की (सतीं) होती हुई, (यद्दर्द्धिं) जिस समृद्धि और ऐश्वर्य को (वरद) हे वर देने वाले शंकर; जिस (परिजनविधेय-त्रिभुवनः) त्रिलोकी को अपना दास बना लेने वाले (बाणः) बाणासुर ने (अधश्चक्रे) नीचा और फीका कर दिया (तत्) वह (त्वच्चरणयोः) आपके चरणों में (वरिवसितरि) निवास करने वाले बाणासुर के लिये (चित्रं) आश्चर्यजनक कार्य, (न) नहीं था (त्वयि) तुम्हारे चरणों में (शिरसः) शिर का (अवनतिः) झुकना (कस्यापि) किसके (उन्नत्यै) उन्नति के

लिये (न भवति) नहीं होता है ? अर्थात् आपकी शरण में आने पर सब को सफलता प्राप्त होती है ।

(१४)

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद् यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपिश्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥

(त्रिनयन) हे त्रिनयन शंकर, (अकाण्डब्रह्माण्डक्षय-चकितदेवासुरकृपाविधेयस्य) समुद्रमथन से विष निकलने के कारण असमय में ही समस्त ब्रह्माण्ड के नष्ट हो जाने के भय से भयभीत होकर जब देव और दानव दोनों ने करुणापूर्वक विनती की तब करुणा से पिघल जाने वाले आपने, (यः) जो संकट (आसीत्) था उस रूप (विषं) विष के (संहृतवतः) पी जाने वाले (तव) आप के (कण्ठे) कण्ठ में (स) वह (कल्माषः) कालापन अथवा नीलापन दिखलाई पड़ता है और जिसके कारण आप नीलकण्ठ कहलाते हैं, (अहो) अहा ! वह नीलापन (श्रियं) शोभा (न) नहीं (कुरुते) देता है (न) ऐसी बात नहीं, वह अत्यन्त शोभा देता है । (भुवनभयभङ्गव्यसनिनः) जो

त्रिलोकी के भय और संकट को भंग करने में सन्नद्ध रहते हैं उनका (विकारः) दोष (अपि) भी (श्लाघ्यः) सराहनीय होता है।

(१५)

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः॥

(यस्य) जिस (नित्यः) सदैव (जयिनो) विजयी कामदेव के (विशिखाः) बाण (क्वचिद्) कहीं (अपि) भी (सदेवासुरनरे) देव, असुरों और मनुष्य के (जगति) जगत् में (असिद्धार्थाः) असफल (नैव) कदापि नहीं (निवर्तन्ते) लौटते हैं, (ईश) हे ईश्वर शंकर भगवान्, (स) वह (स्मरः) कामदेव (त्वां) तुमको (इतरसुरसाधारणं) अन्य देवताओं के समान एक साधारण देवता समझकर आपके ऊपर अपना बाण चलाने वाला (स्मर्तव्यात्मा) जिसका केवल नाम स्मरण के लिये शेष रह जाय ऐसा होगया अर्थात् दग्ध होगया। (वशिषु) जितेन्द्रियों, योगियों का (परिभवः) अनादर (हि) यह निश्चय है, कि (पथ्यः) हितकर (न) नहीं होता।

(१६)

महीं पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥

हे भगवन्, जब (त्वं) आप (जगद्रक्षायै) जगत् की रक्षा के लिये (नटसि) ताण्डव नृत्य करते हैं तो (मही) पृथ्वी (पादाघातात्) आपके पदों के आघात से (सहसा) एकाएक, तुरन्त (संशय पदं) संशय पद को (व्रजति) प्राप्त हो जाती है कि कहीं मैं धसक न जाऊँ, (भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणं) आपके लोहदण्डरूपी भुजाओं से पीड़ित तारागणों वाला (विष्णोः पदं) आकाश दुःखी होता है और (मुहुः) फिर (अनिभृतजटाताडिततटा) खुली हुई जटाओं की फटकार से जिसके तट चोट खाते हैं ऐसा (द्यौः) स्वर्ग, (दौस्थ्यं) कम्पन को, (याति) प्राप्त होता है अर्थात् कांप उठता है। (ननु) निश्चय ही आपका (विभुता) वैभव (वाम) उलटा (एव) ही है अर्थात् आपकी विभूति का खेल ही उलटा है।

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः॥

(वियद्व्यापी) आकाश को व्याप्त किये हुये अपने भीतर (तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः) नक्षत्रगण के द्वारा फेन के समान शोभा को बढ़ाता हुआ (वारां) आकाश गंगा के जल का (यः) जो (प्रवाहः) प्रवाह है (तेन) उसके द्वारा (जगत्) जगत् (जलधिवलयं) और चारों ओर से समुद्र द्वारा घिर कर (द्वीपाकारं) जम्बू आदि सात खण्डों में विभक्त हो द्वीपाकार (कृतं) कर दिया गया है वह (ते) आपके (शिरसि) शिर पर (पृषतलघुदृष्टः) एक बूँद के समान छोटा देखा गया है; (इति) यह जो है (अनेन) उससे (तव) आपका (धृतमहिमदिव्यं) परम महिमा को धारण किये हुये अलौकिक, (वपुः) शरीर (उन्नेयं) अनुमान ही किये जाने योग्य है। अर्थात् इतनी बड़ी आकाश गंगा जिसके शिर पर एक बूँद के समान छोटी प्रतीत होती है उस शंकर भगवान् का शरीर कितना विशाल होगा इसका केवल अनुमान ही किया जा सकता है।

(१८)

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बर विधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥

आपने जो (क्षोणी) पृथ्वी को (रथः) रथ बनाया था (शतधृतिः) ब्रह्मा को (यन्ता) रथ हांकने वाला सारथी (अगेन्द्रः) पर्वतों के राजा सुमेरु को धनुष (चन्द्रार्कौ) सूर्य्य और चन्द्रमा को (रथाङ्गे) रथ के दोनों पहिये (रथचरणपाणिः) चक्रपाणि अर्थात् विष्णु को बाण (इति) यह आयोजन किया था। (त्रिपुरतृणं) तिनके समान त्रिपुर को (दिधक्षोः) जलाने वाले (विधेयैः) अधीनों के साथ (क्रीडन्त्यः) खेलने वाले (ते) आपके लिये (कः) क्या (अयं) यह (आडम्बर विधिः) आडम्बर रचना आवश्यक थी ? नहीं। (खलु) निश्चित सिद्धान्त है कि (प्रभु धियः) स्वामी अथवा भगवान की इच्छायें (परतंत्रः) परतंत्र (न) नहीं होती।

(१९)

हरिस्ते साहस्रं कमल बलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्र कमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥

(त्रिपुरहर) हे त्रिपुरारी भगवान् शंकर, (हरिः) विष्णु ने जब (साहस्रं) एक सहस्र (कमलबलिं) कमलों की पूजा सामग्री (ते) आपके [पदयोः] चरणों में [आधाय] रख कर [यदा] जब [तस्मिन्] उनमें [एकोने] एक कम पाया और [निजं] अपने [नेत्र कमलं] नेत्र रूपी कमल को [उदहरन्] उखाड़ने लगे अतः [असौ] यह [परिणतिं] सीमा को [गतः] पहुँचा हुआ [भक्त्युद्रेक] भक्ति का उद्रेक जोश [चक्रवपुषा] सुदर्शन चक्र का रूप धारण करके [त्रयाणां] तीनों [जगतां] लोकों की [रक्षायै] रक्षा के लिये [जागर्ति] जागता रहता है अर्थात् सदैव बड़ी सावधानी से तीनों लोकों की रक्षा किया करता है ।

(२०)

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्रकर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।

अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदान प्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बध्वा दृढ़परिकरः कर्मसु जनः ॥

[क्रतौ] यज्ञ के [सुप्ते] समाप्त होजाने पर [क्रतुमतां] यज्ञ करने वालों को [फलयोगे] फल पाने के सम्बन्ध में [त्वं] तुम [जाग्रत्] जागते रहते [असि] हो अन्यथा [कर्म] यज्ञ कर्म अथवा किसी प्रकार का भी कर्म जब [प्रध्वस्तं] समाप्त हो गया तो वह फिर [पुरुषाराधनं] भगवान् की आराधना के बिना [क्व] कहां अथवा क्यों कर [फलति] फल दे सकता है। [अतः] इसलिये [त्वां] तुम को [क्रतुषु] यज्ञों में [फलदान प्रतिभुवं] फल दिलाने में जिम्मेदार जमानत करने वाला (श्रुतौ) वेदों द्वारा (संप्रेक्ष्य) जानकर अथवा सुनकर (श्रद्धां) श्रद्धा (बध्वा) के बल से (कर्मसु) यज्ञ कर्मों में (जनः) मनुष्य (दृढ़ परिकरः) कमर कस कर तत्पर हो जाते हैं।

(२१)

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफल विधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥

(शरणद) हे शरणागतपालक, (क्रियादक्षः) समस्त यज्ञक्रियाओं में प्रवीण (तनुभृतां) प्रजा के (अधीशः) राजा (दक्षः) दक्षप्रजापति (क्रतुपति) जब स्वयं यज्ञ करने वाले यजमान थे, और (ऋषीणां) भृगु, वसिष्ठ आदि ऋषि (आर्त्विज्यं) ऋत्विज थे, तथा (सुरगणाः) देवगण (सदस्याः) यज्ञोत्सव के सदस्य अर्थात् साक्षी थे (क्रतुभ्रंशः) ऐसे बड़े यज्ञ का भी भ्रंश, नाश, (क्रतुफलविधानव्यसिननो) यज्ञों का फल देने का आयोजन जिनका व्यसन अर्थात् लगन और स्वभाव है उन (त्वत्तः) तुम्हारे द्वारा हुआ। अतः (ध्रुवं) यह निश्चित है कि (श्रद्धाविधुरं) श्रद्धाविहीन (कर्त्तुः) यज्ञ कर्त्ता के (मखाः) यज्ञ (हि) अवश्य ही (अभिचाराय) दिखावे के लिए ही होते हैं और उनका नाश ही होता है।

---

नोटः—इस छन्द की तीसरी पंक्ति में 'क्रतुभ्रंश' के स्थान पर 'क्रतुभ्रेषः' भी पाठ है।

(२२)

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः॥

(नाथ) हे नाथ, (रोहिद्भूतां) हिरिणी बनकर भागने वाली (स्वां) अपनी (दुहितरं) पुत्री के पीछे (ऋष्यस्य) हिरण का (वपुषा) शरीर धारण करके (प्रसभं) बलपूर्वक (रिरमयिषुं) संभोग करने की इच्छा से भागने वाले (अभिकं) कामातुर (प्रजानाथं) ब्रह्मा को (ते) आपके (धनुष्पाणेः) धनुषधारी के हाथ से (सपत्राकृत) बाणों द्वारा बींधे हुये (दिवं) आकाश में (अपि) भी (यातं) गये हुये (त्रसन्तं) भयभीत को (मृगव्याधरभसः) हिरण के पीछे लगे हुये व्याध का तीव्र भय (अद्य) आज (अपि) भी (न) नहीं (त्यजति) छोड़ता है।

---

नोटः—इस श्लोक में सूर्योदय से पहिले पूर्वदिशा में उदय होने वाले प्रातःकालीन अरुणोदय का जिसे ऊषा काल कहते हैं उल्लेख है। सूर्य को ब्रह्मा और ऊषा को उसकी पुत्री कल्पित करके एक रूपक में ऊषा के पीछे सूर्य के आने का वर्णन किया है। संस्कृत भाषा में हरिण शब्द सूर्य का पर्यायवाची भी है। पौराणिक कथा इस प्रकार है कि शंकर भगवान् ने इस अत्याचार को देखकर जब अपना बाण छोड़ा तो ब्रह्मा ने 'मृगशिरा' नक्षत्र के रूप में आकाश में भागना आरम्भ किया और शंकर जी का बाण 'आर्द्रा' नक्षत्र का रूप धारण करके उसके पीछे

चला। अतः इस श्लोक में 'मृगव्याधरभसः' का आशय यह है कि मृगशिरा नक्षत्र रूपी ब्रह्मा आर्द्रा नक्षत्र रूपी शंकर भगवान के बाण के आगे आगे अब भी आकाश में भयभीत भागा फिरता है।

## (२३)

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः॥

(पुरमथन) हे पुरारी, (धृतधनुषं) धनुष धारण किये हुये (पुष्पायुधं) पुष्प का बाण चलाने वाले कामदेव को (अह्नाय) तुरन्त (तृणवत्) तिनके के समान (पुरः) अपने सामने ही (प्लुष्टं) भस्म होता हुआ (दृष्ट्वा) देखकर भी (यदि) यदि (स्वलावण्याशंसा) अपने सौन्दर्य की प्रशंसा करने वाली अर्थात् अपने सौन्दर्य की गर्वीली (देवी) पार्वती (यमनिरत) हे योगीश्वर जितेन्द्रियों के भी जितेन्द्रिय शंकर भगवान् (देहार्धघटनात्) इस कारण से कि आपने उनको अपने शरीर का आधा अंग बना रखा है आपको (अद्धा) वास्तव में [स्त्रैणं] कामुक स्त्री के

वशीभूत [अवैति] समझती है तो [वरद] हे वरदानी शंकर [वत] खेद है [युवतयः] स्त्रियां [मुग्धाः] कम समझ होती ही हैं।

(२४)

स्मशानेष्वाक्रीड़ा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः सृगपि नृकरोटीपरिकरः।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मङ्गलमसि॥

[स्मरहर] हे कामदेव के भस्म करने वाले शंकर [स्मशानेषु] स्मशानों में [आक्रीड़ा] आपकी क्रीड़ायें होती हैं [पिशाचाः] मांस भोजी प्रेतगण [सहचराः] आपके साथी हैं, [चिताभस्मालेपः] चिता की राख आपके शरीर में लेपन है, [सृक्] माला [अपि] भी, [नृकरोटीपरिकरः] मनुष्यों की खोपड़ियों का संग्रह है, [तव] आपका (एवं) इस प्रकार [अखिलं] समस्त [शीलं] आचरण [अमङ्गल्यं] अमंगलरूप [नाम] निश्चय [एव] ही [भवतु] होता है [तथा] तो [अपि] भी, [वरद] हे वरदानी शिव, इसी स्वरूप से तुम [स्मर्तृणां] आपका स्मरण करने वाले भक्तों के लिये [परमं] बड़ा [मङ्गलं] मङ्गल करने वाले [असि] हो।

(२५)

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदा लोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत् किल भवान् ॥

(यमिनः) योगीजन (मनः) को (प्रत्यक्चित्ते) अन्तरात्मा में (सविधं) निकट (अवधाय) स्थिर करके (आत्तमरुतः) प्राणों का संयम करके, (प्रहृष्यद्रोमाणः) हर्ष के उद्रेक से जिनके रोमांच खड़े हो गये हैं अर्थात् गदगद् हैं और (प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः) आनन्द के अश्रुओं के जल से जिन के नेत्र भरे हुये हैं, वे (अमृतमये) अमृत रूपी जल से भरे हुये, (ह्रद) सरोवर में (निमज्य) स्नान करके (आह्लादं) आनन्द का (इव) मानों अनुभव करते हैं, वे (यत्) जिस (किमपि) किसी (तत्त्वं) तत्त्व को देखकर उसे (अन्तः) अपने भीतर हृदय में धारण करते हैं (तत्) वह तत्त्व (किल) निश्चय ही (भवान्) आप शिवशंकर हैं ।

(२६)

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।

परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता विभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह यत्त्वं न भवसि ॥

(त्वं) तुम (अर्कः) सूर्य हो, (त्वं) तुम (सोमः) चन्द्रमा (असि) हो (त्वं) तुम (पवनः) वायु हो; (त्वं) तुम (हुतवहः) अग्नि हो (त्वं) तुम (आपः) जल हो, (त्वं) तुम (व्योम) आकाश हो (त्वमु) तुम ही (धरणिः) पृथ्वी हो (च) और (त्वं) तुम (आत्मा) आत्मा हो (इति) यह (एवं) इस प्रकार (परिणताः) पक्की बुद्धिवाले विद्वज्जन (परिच्छिन्नां) बंटी हुई भिन्नता युक्त मूर्तियों से सम्बन्धित (गिरं) वाणी (त्वयि) तुम में (विभ्रतु) धारण करें अर्थात् आपको सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी और आत्मा के आठ रूपों में आपको विद्वज्जन बतलावें (वयं) हम तो (इह) इस विश्व में (तत्) कोई ऐसा (तत्त्वं) तत्त्व (न) नहीं (विद्मः) जानते (यत्) जो, (त्वं) तुम (न) नहीं (भवसि) हो अर्थात् हम तो आपको सर्वत्र व्यापक समझते हैं।

(२७)

त्रयीं तिस्रोवृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत् तीर्णविकृति ।

तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तंत्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥

(शरणद) हे शरणागत को अपनाने वाले शंकर भगवान्, (ओं) ओ३म् (इति) यह (पदं) पद, (अकाराद्यैः) अ, उ, म, [त्रिभिः] तीन [वर्णैः] वर्णों द्वारा [त्रयी] ऋग्, यजुः, साम तीनों वेदों, [तिस्रो] तीनों प्रकार की, [वृत्तीः] जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं [त्रिभुवनं] पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल [अथो] और [त्रीन्] तीनों [अपि] भी [सुरान्] ब्रह्मा, विष्णु, महेश देवताओं का वर्णन करता हुआ, अमात्र चतुर्थ वर्ण से [तीर्णविकृति] विकार रहित अर्थात् निर्विकार, [अणुभिः] सूक्ष्म [ध्वनिभिः] ध्वनियों से [अवरुन्धानं] भरे हुये [ते] आपके [तुरीयं] चतुर्थ (धाम) लोक का संकेत करता हुआ, (समस्तं) समष्टि रूप से आपके विश्वरूप में और (व्यस्तं) व्यष्टि रूप से आपके अनेक भिन्न भिन्न रूपों में (त्वां) आपकी ही (गृणाति) स्तुति करता है।

(२८)

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।

अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रविहितनमस्योऽस्मि भवते ॥

(देव) हे देव, (भवः) भव (शर्वः) शर्व, (रुद्रः) रुद्र, (पशुपतिः) पशुपति, (अथ) और (उग्रः) उग्र, (सहमहां) महादेव (तथा) और (भीमेशानौ) भीम तथा ईशान (इति) इस प्रकार (यत्) जो (इदं) यह (अभिधानाष्टकं) आपके आठ नाम प्रसिद्ध हैं (अमुष्मिन्) उनमें से (प्रत्येकं) प्रत्येक का (श्रुतिः) वेद (अपि) भी, अर्थात् पुराण, शास्त्र, स्मृति आदि ही नहीं वेद भी (प्रविचरति) यशोगान करते हैं तथा च उनमें रमण करते हैं। मैं तो (भवते) आपके (प्रियायास्मै) परमप्रिय (धाम्ने) तेज स्वरूप में (प्रविहित) पूर्णविधानपूर्वक (नमस्यः) नमित (अस्मि) हूँ, अर्थात् मन, वाणी और शरीर से आपको श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूँ।

(२६)

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमतिसर्वाय च नमः ॥

(त्रिनयन) हे तीन नेत्र वाले शंकर, (नेदिष्ठाय) निकट से भी निकट रहने वाले तुम को (नमः) नमस्कार है (च) और (प्रियदव) हे निर्जनवन में रमण करने वाले (दविष्ठाय) दूर से दूर रहने वाले आपको नमस्कार है, (स्मरहर) हे कामदेव के भस्म करने वाले शंकर (क्षोदिष्ठाय) आप सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणोरणीयान् को भी नमस्कार है (च) और (महिष्ठाय) महतो महीयान् को भी नमस्कार है। (वर्षिष्ठाय) अवस्था में सबसे बड़े आपको नमस्कार है (च) और (यविष्ठाय) युवकों में भी युवक आपको नमस्कार है। (सर्वस्मै) सर्व स्वरूप (ते) आपको नमस्कार है (च) और (तदिदमतिसर्वाय) इस तथा उस सब लोकों के परे आपको नमस्कार है।

## (३०)

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमोनमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमोनमः।
जनसुखकृते सत्वोद्रिक्तौ मृडाय नमोनमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमोनमः॥

(विश्वोत्पत्तौ) विश्व की उत्पत्ति में अर्थात् विश्व को उत्पन्न करने के लिये, (बहलरजसे) परम रजोगुणरूप

(भवाय) भव नामधारी आपको (नमोनमः) बारम्बार नमस्कार है। (तत्संहारे) उसी विश्व का संहार करने के लिये (प्रबलतमसे) महान् तमोगुण के धारण करने वाले (हराय) हर नामधारी आपको (नमोनमः) बारम्बार नमस्कार है। (जनसुखकृते) जगत् को सुख के लिये (सत्वोद्रिक्तौ) सत्वगुण प्रधान (मृडाय) मृड नाम से प्रसिद्ध आपको (नमोनमः) बारम्बार नमस्कार है। (प्रमहसि) सर्वोच्च (निस्त्रैगुण्ये) त्रिगुणातीत (पदे) पद पर स्थित (शिवाय) कल्याण करने वाले सार्थक शिव नाम से प्रसिद्ध आपको (नमोनमः) बारम्बार नमस्कार है।

(३१)

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः।
इति चकितममंदीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद, चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥

(क्व) कहां तो (इदं) मेरा यह, (कृशपरिणति) मंद और अल्प छोटा सा (च) और (क्लेशवश्यं) अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश पांचों क्लेशों से वशीभूत मन और बुद्धि (च) और (क्व) कहां (तव) आपकी (गुणसीमो-

ल्लंघिनी) त्रिगुणातीत सर्व प्रकार की सीमा को उल्लंघन करने वाली (शश्वत्) सदैव रहने वाली अक्षय (ऋद्धिः) विभूति अर्थात् मुझ अल्प बुद्धि में शक्ति कहाँ है जो आपके अनन्त गुणों और विभूति का वर्णन कर सकूँ। परन्तु [इति] इससे [चकितं] आश्चर्य से पूर्ण अशक्त [मां] मुझको केवल [भक्तिः] भक्ति भाव ने, [वरद] हे वरदान देने वाले शंकर भगवान्, [अमंदीकृत्य] उत्साहित करके [वाक्यपुष्पोहारं] आपकी स्तुति रूपी वाणी के पुष्पों का हार [ते] आपके [चरणयोः] चरणों में [अधात्] रखा है। अर्थात् केवल भक्ति भाव से प्रेरित होकर यह महिम्नः स्तोत्र नाम स्तुति मैंने आपकी की है।

## (३२)

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

(असितगिरिसमं) काले पर्वत के समान (कज्जलं) लिखने की स्याही (सिन्धुपात्रे) सिन्धु के समान बड़ी दवात में (स्यात्) होवे, (सुरतरुवरशाखा) कल्पवृक्ष की

शाखा की (लेखनी) कलम और (उर्वी) पृथ्वी के समान विस्तीर्ण (पत्रं) कागज (गृहीत्वा) लेकर (यदि) अगर (शारदा) सरस्वती देवी (सर्वकालं) सदैव (लिखति) लिखती रहे (तदपि) तो भी (ईश) हे ईश, (तव) तुम्हारे (गुणानां) गुणों के (पारं) अन्त तक (न) नहीं (याति) पहुँच सकती।

## (३३)

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
र्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार॥

(सकलगुणवरिष्ठः) समस्तगुणोंयुक्त अतिश्रेष्ठ (पुष्पदन्ताभिधानः) पुष्पदन्त नामधारी गंधर्व ने (असुरसुरमुनीन्द्रैः) देवता, दानव और मुनीश्वरों द्वारा, (अर्चितस्य) जिनकी पूजा की जाती है (इन्दुमौलेः) जिनके मस्तक पर चन्द्रमा विराजमान है (ग्रथितगुणमहिम्नः) जो अनेक गुण की महिमा युक्त है ऐसे (निर्गुणस्य) निर्गुण (ईश्वरस्य) ईश्वर का, शिवजी का (अलघुवृत्तैः) बड़े बड़े छन्दों में (रुचिरं) सुन्दर (एतत्) यह (स्तोत्रं) स्तोत्र (चकार) रचा।

(३४)

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥

(अहरहः) प्रतिदिन (धूर्जटेः) शिवजी का (एतत्) इस (अनवद्यं) पवित्र (स्तोत्रं) स्तोत्र का (परमभक्त्या) बड़ी भक्ति द्वारा (यः) जो (पुमान्) पुरुष (शुद्धचित्तः) शुद्धचित्त से (पठति) पाठ करता है, (स) वह (शिवलोके) शिवलोक में (रुद्रतुल्यः) रुद्र के समान (तथा) और (अत्र) इस लोक में (प्रचुरतरधनायुः) सबसे अधिक धन और आयुः वाला (पुत्रवान्) सन्तान वाला (च) और (कीर्तिमान्) कीर्ति का भाजन होता है ।

(३५)

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मंत्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥

(महेशात्) महादेव जी से (अपर) दूसरा कोई (देवः) देव (न) नहीं है, (महिम्नः) महिम्न स्तोत्र से (अपरा)

दूसरा कोई (स्तुतिः) स्तोत्र नहीं है (अघोरात्) शिवजी के अघोरमंत्र से (अपरः) दूसरा कोई (मंत्रः) मंत्र नहीं है और (गुरोः) गुरु से (परं) परे कोई (तत्त्वं) तत्त्व (न) नहीं (अस्ति) है।

(३६)

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः।
महिम्नः स्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥

(दीक्षा) दीक्षा, (दानं) दान, (तपः) तप, (तीर्थं) तीर्थ (ज्ञानं) ज्ञान, (यागादिकाः) यज्ञ आदि (क्रियाः) कर्म (महिम्नः) महिम्न (स्तवपाठस्य) स्तोत्र के पाठ की (षोडशीं) सोलहवें (कलां) अंश के भी (न) नहीं (अर्हन्ति) योग्य है।

(३७)

कुसुमदशननामा सर्वगंधर्वराजः
शिशुशशिधरमौलेर्देवदेवस्य दासः।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद् दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥

(कुसुमदशननामा) पुष्पदन्त नाम धारी, (सर्वगंधर्वराजः) सब गंधर्वों में प्रधान, (शिशुशशिधरमौलेः) मस्तक

पर द्वितीया का चन्द्र धारण करने वाले, (देवदेवस्य) महादेव जी का (दासः) दास (स) उसने (अस्य) उन शिवजी के (रोषात्) क्रोध से (खलु) वास्तव में (निज महिम्नः) अपने पद से, (भ्रष्टः) च्युत होते हुये (एव) भी (महिम्नः) शिव जी की महिमा का (दिव्यदिव्यं) दिव्यों में भी दिव्य अर्थात् अत्यन्त अलौकिक (इदं) यह (स्तवनं) स्तोत्र (अकार्षीत्) रचा।

(३८)

सुरवर मुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः।
ब्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम्॥

(यदि) यदि (मनुष्यः) मनुष्य (प्राञ्जलिः) हाथ जोड़ कर (नान्यचेताः) अनन्य भक्ति और ध्यानपूर्वक (सुरवर-मुनिपूज्यं) उत्तम देवताओं और मुनीश्वरों द्वारा आदर पाये हुये (स्वर्गमोक्षैकहेतुं) स्वर्ग और मोक्ष के दिलाने वाले एक मात्र साधन (इदं) इस (पुष्पदन्तप्रणीतं) पुष्पदन्त के रचे हुये (अमोघं) फल दिलाने में कदापि असफल न होने वाले (स्तवनं) स्तोत्र का (पठति) पाठ करता है वह

(किन्नरैः) किन्नरों द्वारा (स्तूयमानः) यशगान का अधिकारी (शिवसमीपं) शिव जी के समीप (व्रजति) पहुँच जाता है।

(३९)

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥

(इदं) यह, (पुण्यं) पवित्र, (गन्धर्वभाषितं) पुष्पदन्त गन्धर्व का उच्चारण किया हुआ (ईश्वरवर्णनं) शंकर भगवान की महिमा का वर्णन (अनौपम्यं) उपमा रहित, (मनोहारि) मन का हरने वाला और (शिवं) कल्याण का देने वाला है (आसमाप्तं) पूर्णतया समाप्त हुआ।

(४०)

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदा शिवः ॥

(इति) इस प्रकार की (एषा) यह (वाङ्मयीपूजा) वाणी द्वारा स्तुतिरूप पूजा (श्रीमच्छंकरपादयोः) शंकर भगवान् के चरणों में (अर्पिता) अर्पित की जाती है (तेन) इस से (देवेशः) देवताओं के भी ईश (सदाशिवः) सदैव कल्याण करने वाले शिव जी महाराज (मे) मुझ पर (प्रीयताम्) प्रसन्न हों।

(४१)

तव तत्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर ।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमोनमः ॥

(महेश्वर) हे महेश्वर (तव) आपका (तत्त्वं) मर्म, तत्त्व, भेद (न) नहीं (जानामि) जानता हूँ कि आप (कीदृशः) किस प्रकार के (असि) हैं। (यादृशः) जिस प्रकार के भी (असि) हों (महादेव) हे महादेव (तादृशाय) उसी प्रकार के आप को (नमोनमः) बारम्बार नमस्कार है।

(४२)

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥

प्रतिदिन (एककालं) एक समय, (द्विकालं) दो समय (वा) अथवा (त्रिकालं) तीन समय (यः) जो (नरः) मनुष्य (पठेत्) इसका पाठ करे तो (सर्वपापविनिर्मुक्तः) समस्त पापों से पूर्णतया शुद्ध और पवित्र होकर (शिवलोके) शिवलोक में (महीयते) महान् पद को प्राप्त करता है।

(४३)

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥

(श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन) श्री पुष्पदन्त के कमल मुख से उच्चारण किये हुये, (किल्विषहरेण) पापों को हर लेने वाले, (हरप्रियेण) शिव जी जिससे प्रसन्न हुये (स्तोत्रेण) इस महिम्नः स्तोत्र को (कण्ठस्थितेन) कण्ठ करके (समाहितेन) चित्त के समाधानपूर्वक (पठितेन) पढ़ने से अर्थात् उच्चारण करने से (भूतपतिः) भूतेश्वर भगवान् (महेशः) महादेव जी (सुप्रीणितः) अत्यन्त प्रसन्न (भवति) होते हैं ।

शिवमहिम्नः स्तोत्रम्

समाप्तम्

# ॥ शिव-नाम संकीर्तनम् ॥

महादेव शिवशंकर शम्भो उमाकान्त हर त्रिपुरारे ।
मृत्युञ्जय वृषभध्वज शूलिन् गङ्गाधर मृड मदनारे ॥
हर शिव शंकर गौरीशं, वन्दे गङ्गाधरमीशम् ।
रुद्रं पशुपतिमीशानं, कलये काशीपुरिनाथम् ॥
जय शम्भो, जय शम्भो, शिव गौरीशंकर जय शम्भो ।
जय शम्भो, जय शम्भो, शिव गौरीशंकर जय शम्भो ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः

# श्रीदैवीसम्पद्मण्डल के प्रधान केन्द्र

## श्रीपरमार्थनिकेतन

### यहाँ के दर्शनीय स्थल और परमोपयोगी कार्य्य

१–प्रातः सायं दैनिक प्रार्थना और सत्संग द्वारा सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक शिक्षा।

२–उपनिषद्, दर्शन, गीता, भागवत, रामायण आदि शास्त्रों का अध्ययन और आसन, प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं की शिक्षा।

३–बृहत सत्संग भवन और श्री सर्वेश्वर भगवान् का विशाल मन्दिर जिसमें प्रणव के अन्तर्गत शिव और उनके दोनों पक्षों में सीताराम और राधाकृष्ण की भव्य मूर्तियों के दर्शन।

४–द्वार पर विशाल शान्तिस्तम्भ जिसके शिखर पर दर्शनीय घंटाघर और नीचे दैवीसम्पद्मन्दिर जिसमें २६ दैवी सम्पद् के लक्षणों एवं समस्त धर्मों के महापुरुषों के चित्र तथा कोणों में श्री गणेश, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, हनुमान जी आदि के दर्शन।

५–क्षीर सागर का दृश्य जिसमें शेष शय्या पर भगवान् विष्णु का दर्शन, चरणों में लक्ष्मी सहित।

६–सप्तर्षियों, अन्य महर्षियों, महात्माओं और महाकवियों तथा प्रसिद्ध देश भक्तों की सुन्दर मूर्तियां।

७–सावित्री और सत्यवान, स्मशान में राजा हरिश्चन्द्र, महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में सीता, और शबरी के आश्रम में राम और लक्ष्मण के दर्शन।

८–सेतुबन्ध रामेश्वर के समान जल में तैरते हुये पाषाण का प्रदर्शन।

९–सत्संगियों के ठहरने के लिये सुन्दर स्थान; जल, बिजली आदि की सुविधाओं सहित।

१०–हरित वनास्पतियों और पुष्पों से सुसज्जित रमणीक प्राङ्गण।